REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 15 | ISSUE - 3 | DECEMBER - 2025

बाजार व्यवस्था में स्त्री की स्थिति : प्रभा खेतान का वैचारिक प्रतिरोध

प्रियंका ठाकुर
प्राध्यापक, जोगेश चंद्र चौधरी कॉलेज.

प्रभा खेतान हिंदी साहित्य की उन लेखिकाओं में से हैं जो अपनी लेखनी के माध्यम से स्त्री विमर्श को एक मजबूत धरातल प्रदान करती हैं। उन्होंने अपने शब्दों के धार को केवल कविता, कहानी तक ही सीमित नहीं रखा, अपितु आलोचना के गूढ़ क्षेत्र को भी मजबूती से पकड़ा। इनकी लेखनी में सौंदर्य की बहुलता हो या न हो किंतु ईमानदारी और निर्भीकता की रंच मात्र कमी नहीं है। लेखिका ने स्त्री विमर्श को जीवन के ठोस अनुभव से जोड़ा है जिसका सशक्त उदाहरण उनकी पुस्तक 'बाजार के बीच : बाजार के खिलाफ' है। इस पुस्तक के माध्यम से लखिका ने बाजार व्यवस्था में स्त्री की स्थिति, उसकी सामाजिक-आर्थिक भूमिका और उसके प्रति होने वाले शोषण के विभिन्न कारणों की गहन पड़ताल की है।

स्त्री को शोषित करने वाले कई कारक हैं और इन्हें जड़ से खत्म करना संभव भी नहीं है। किंतु आर्थिक स्वावलंबन पितृसत्तात्मकता के जड़ों को खोखला जरूर बनाता है। प्रभा खेतान कहती हैं-''जब पुरुष ही कमाएगा, परिवार में निर्णय का अधिकार भी पुरुष को ही मिलेगा तो सत्ता और अधिकार पुरुष के हाथों में केंद्रित होगी।''[1]

लेकिन प्रश्न यह उठता है कि भूमंडलीकरण के दौर में स्त्री की वास्तविक स्थिति क्या है? इस दौर की सबसे भयानक स्थिति है श्रम का यांत्रिकीकरण। नवीन यंत्रों ने जहां एक ओर श्रम के भार केा कम किया वहीं दूसरी ओर किसानों को मजदूर में परिणत कर दिया- ''कल तक खेतों में लगे हुए मजदूर आज बेकार हो रहे हैं, क्योंकि बड़े खेतों को बंधुआ मजदूर की जरूरत नहीं। जहां भी ज्यादा श्रम की आवश्यकता है उस श्रम को यंत्र करेगा और अंतत: एक गांव के दो-चार बड़े किसानों को छोड़कर छोटे किसान और दिहाड़ी, मजदूर, भूमिहीन घर-विहीन बाजार पर निर्भरशीलता भूखे-नंगे होते चले जाएंगे।''[2] स्त्री भी इस चक्र से कैसे बच पाती- ''जैसे-जैसे जनसंख्या शहरों की ओर अग्रसर होती जा रही थी, वैसे-वैसे उद्योगों में स्त्रियों की भागीदारी बढ़ती ही गई। स्त्रियों के सस्ते श्रम की आवश्यकता दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई। साथ ही फोर्डवादी उद्योग-व्यवस्था के कारण औद्योगिक क्षेत्रों में भी बड़ी संख्या में स्त्रिरूों को समेटना ा संभव हुआ। बल्कि मारीश्स जैसे छोटे देशों में कपड़ा उद्योग के कारण यह प्रक्रिया 1970 में 20 प्रतिशत से बढ़ कर 1980 में 60 प्रतिशत हो गई।''[3]

यह आंकड़े भले ही यह साबित करते हों कि श्रम क्षेत्र में स्त्रियों की संख्या बढ़ी है, किंतु उसकी स्थिति अत्यंत ही दयनीय है। परिवार एवं समाज की भांति ही कार्यक्षेत्र में भी उसे भेदभाव का सामना करना पड़ता है। यह समस्या केवल भारत में ही नहीं है, अपितु वैश्विक धरातल पर मौजूद है। अमेरिका जैसे विकसित देश का उदाहरण देते हुए प्रभा खेतान कहती हैं- ''वहां की एक हजार उच्च कंपनियों के प्रबंधन में केवल 2 ही स्त्रियां हैं। बड़ी संख्या में स्त्रियां बेकार हैं तथा 3 करोड़ अल्पकालीन श्रमिक हैं जिसका दो-तिहाई हिस्सा स्त्रियों का है तथा जो स्वास्थ्य की आधारभूत सुविधा से वंचित हैं। इस पर तुर्रा यह कि इन स्त्रियों से कहा जा रहा है कि तुम्हारा ा काम घर-बच्चों की

देखभाल करना है। बड़े सूक्ष्म स्तर पर स्त्री को यों सामाजिक और उत्पादित जगत से बहिष्कृत किया जा रहा है।''[4] वास्तविकता यह है कि आज स्त्रियों का दो तरीके से शोषण किया जा रहा है-''प्रथम, स्त्री का शोषण सस्ते श्रम के संसाधन के रूप में, दूसरा समाज के पुनरुत्पादन यानी समाज का नैरंतर्य संतान के माध्यम से बनाए रखने में स्त्री की महिमामंडन करके। दोनों का संबंध स्त्री के श्रम से है।''[5]

इन सब परिस्थितियों ने उसके मनोबल को इतना तोड़ दिया है कि अधिकांशत: स्त्रियां अपनी कार्यकुशलता की मांग ही नहीं करतीं। उन्हें इस बात का डर लगा रहता है कि उनके आवाज उठाने पर कहीं उन्हें नौकरी से निकाल न दिया जाए या फिर सुपरवाइजन उन पर नाराज न हो जाए। दूसरी तरफ भूमंडलीकरण के दौर में नई तकनीक और मशीनों का प्रशिक्षण भी पुरुषो को ही मिलता रहा है। फलत: वहां भी उसकी स्थिति दोयम दर्जे की ही रही। विडंबना यह है कि छँटनी की पहली मार भी उसे ही झेलनी पड़ती है। इस परिस्थिति का विस्तारित रूप से विवेच करते हुए प्रभा खेतान लिखती हैं- ''बाजार की शक्ति को स्थापित करने से स्त्री श्रम का जिन्सीकरण हुआ है क्योंकि बाजार स्त्री श्रमिकों के जीवन में व्यवस्थात्मक रूप से हस्तक्षेप करता है। कार्यक्षेत्र में यदि अधिक से अधिक स्त्रियां भाग ले रही हैं तो वह यौन उत्पीड़न भी बढ़ा है घटा नहीं है। दूसरे सबसे दुख की बात है, स्त्री का यों बिकाऊ होन। पुरुष की तुलना में उसके श्रम का कमतर मूल्यांकन होना और स्थानीय राजनीतिक व्यक्तियों का स्त्री समस्या की ओर से आंखें फेरना। दोनों बातों में स्त्री का हित शामिल नहीं।''[6]

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि श्रम की दुनिया में स्त्री जब प्रवेश करती है तो केवल श्रम के बदले पैसे ले लेने से ही उसकी समस्या का समाधान नहीं होता है। अपितु उसे अपने प्रति होने वाले अन्यायों के विरुद्ध लड़ना भी सीखना होगा। प्रभा खेतान एक उदाहरण देते हुए कहती हैं- ''जिस कमीज की सिलाई करने में एक श्रमिक को 15 रुपये मिलते हैं, उसे एक अमेरिकी स्त्री 100 डॉलर यानी लगभग पांच हजार रुपये में खरीदती है। पांच हजार रुपये में कमीज खरीदने वाली स्त्री यदि चाहे तो इस स्त्री के हक में लड़ाई लड़ सकती है, लेकिन क्या वह ऐसा करना चाहेगी? तकनीक किसी भी हालत में निष्पक्ष नहीं। मानवीय सरोकारों से तकनीक स्वतंत्र भी नहीं; तकनीक के साथ सामाजिक विशेषताएं जुड़ी होती हैं जो तकनीक को और विस्थापित करती है। स्त्री वर्ग को भी यह समझना होगा कि परिवर्तन से होने वाले विरोधाभासी परिणामों का सामना कैसे किया जाए।''[7] मेहनतकश स्त्रियों को स्वयं ही अपने अधिकारों की लड़ाई लड़नी होगी। अपने अधिकारों के प्रति सचेत होना पड़ेगा। लेखिका की दृष्टि में स्त्री-मुक्ति का संघर्ष केवल बाहरी संरचनाओं के विरुद्ध नहीं , बल्कि भीतर गहरे पैठी हुई आत्महीनता, अपराधबोध और सामाजिक दबावों के विरुद्ध भी है।

निम्नवर्गीय स्त्रियों के बाद बात आती है मध्यवर्गीय स्त्रियों की जो लंबे समय से पितृसत्तात्मक व्यवस्था के खिलाफ लड़ाई लड़ती आ रही है। समय के साथ कुछ परिवर्तन आए भी। उसके परंपरावादी रूप में बदलाव भी आया। लेकिन महत्वपूर्ण प्रश्न यह है यिक इस बदलाव ने क्या इसकी परंपरा से चली आ रही शोषित की भूमिका में पूर्णत: सुधार किया? स्त्री ने तो सोचा था अर्थ की दुनियामें प्रवेश उसे पुरुष की 'मर्दाना छवि' से मुक्ति दिलवाएगी। सम-काम सम-वेतन उसे समाज और परिवार में बराबरी का अधिकार दिलवाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। लेकिन पूंजीवादी व्रूवस्था ने उसके इन सपनें को चकनाचूर कर दिया- ''भारत में एक ऐसा नव धनाढ्य सशक्त वर्ग उभर रहा है जो सुविधाओं से लैस हेता जा रहा है- मगर जरा गौर करें तो पाएंगे कि पंजीवाद ने दमन के नए-नए तरीके ईजाद किए हैं- पारंपरिक भूमिकाओं में थोड़ा-बहुत बदलाव तो आया है मगर इन नयी भूमिकाओं ने स्त्री की कमर तोड़ दी है। आज स्त्री को भी नयी लड़ाइयों में शामिल होना होगा। भूमंडलीकरण के दौर में वैतनिक कार्यों को भी अवैतनिक करार दिया जा रहा है। लचीली श्रम व्यवस्था के नाम पर काम के घंटे बढ़ा दिए गए हैं, पति-पत्नी अधिक और अधिक काम इसलिए करते हैं ताकि ज्यादा पैसे मिलें और उन पैसों से ज्यादा उपभोग किया जा सके। ज्यादा मेहनत करने में स्वास्थ्य हानि, मानसिक तनाव तथा संबंधों में दरार पड़ती है।'[8] प्रभा खेतान ने बाजारवादी व्यवस्था के बीच खड़ें होकर यह भली-भांति समझ लिया था कि अर्थ स्त्री के लिए आवश्यक है, लेकिन पंजीवादी व्यवस्था ने इसे जिस तरीके से जरूरत के रूप में तब्दील किया है, यह एक घतक चाल है। इसलिए वे निष्कर्ष रूप में लिखती हैं ''वास्तव में नरीवाद का दुश्मन न तो पुरुष है और न तो पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था। पितृसत्ता का सामना करना नारीवाद को आ गया है। बल्कि नरीवाद का असल दुश्मन है कॉरपोरेट पूंजी जिसको अब तक नरीवादी स्त्रियां सही परिप्रेक्ष्य में समझ नहीं पाई हैं। समाज और संप्रदाय तथा परिवार पर दबाव कॉरपोरेट पूंजी से पड़ता है। यही वह पूंजी है जो करियर की सफलता ओर पैसा कमाने को ही सर्वोपरि मानता है और धीरे-धीरे न केवल पुरुषों को बल्कि स्त्रियों को भी एक 'वर्क होलियात्म' में परिणत कर देता है।''[9]

प्रभा खेतान ने अपने संपूर्ण विवेचन में यह दर्शाया है कि बाजार का विस्तार स्त्री को दोहरे स्तर पर प्रभावित करता है। एक ओर जहां उपभोक्तावादी संस्कृति उसे लुभाती है, वहीं दूसरी ओर उसका वस्तुकरण कर उसे अपने मुनाफे का साधन बना लेती है। इस संपूर्ण प्रक्रिया में स्त्री की वास्तविक लड़ाई अपनी स्वायत्तता को बचाए रखने की है।

संदर्भ सूची

1) खेतान प्रभा, बाजार के बीच : बाजार के खिलाफ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2004, आवृत्ति संस्करण : 2010, पृष्ठ संख्या-115
2) वही, पृष्ठ संख्या-37
3) वही, पृष्ठ संख्या-51
4) वही, पृष्ठ संख्या-96
5) वही, पृष्ठ संख्या-96
6) वही, पृष्ठ संख्या-244
7) वही, पृष्ठ संख्या-115
8) वही, पृष्ठ संख्या-221-222
9) वही, पृष्ठ संख्या-236